

समाधि विद्या और योग विज्ञान का रहस्य

गितांजली किरण भंगाले

सहायक प्रोफेसर,

मूलजी जेठा ऑटोनोमस कॉलेज, जलगांव

प्रस्तावना :

प्राचीन भारत में योग का सामान्य अर्थ है शरीर और आत्मा की एकता। इसमें शारीरिक मुद्राओं का अभ्यास शामिल है, जिसे संस्कृत में आसन कहा जाता है। योगाभ्यास का परम लक्ष्य शरीर और मन के बीच संतुलन स्थापित करना है, जिससे आत्मबोध होता है। वैदिक काल, पूर्व-शास्त्रीय योगइन सभी ऐतिहासिक कालों में योग को महत्ता दी गई है। इसे हमेशा ज्ञानीजनों ने सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना है, लेकिन यह केवल यहीं तक सीमित नहीं है, बल्कि यह धार्मिक, आध्यात्मिक, नागरिक और सांस्कृतिक परंपराओं का सारतत्त्व बन गया है।

जैसेवैदिक सनातन ऋषि परंपरा, बुद्ध परंपरा, जैन परंपरा, सिद्ध परंपरा और संत परंपराओं में दुनिया की सभी परंपराओं के कुछ तत्व शामिल हैं। योग भारतीय दर्शन का आध्यात्मिक अभ्यास व अनुशासन है, जो व्यक्ति की चेतना को प्रकाशित करने एवं परम सत्ता से जोड़ने में सहायक होता है। यह एक ऐसी कला है, जो जीवन को बेहतर ढंग से जीने का मार्ग प्रशस्त करती है। यह हमारे शारीरिक, बौद्धिक, भावनात्मक, आध्यात्मिक इत्यादि सभी पहलुओं हेतु उपयोगी है। यह कोई धर्म नहीं है, बल्कि स्वयं से प्रश्न करने और आत्म-विश्लेषण करने की एक प्रक्रिया है। सभी परंपराओं का एक ही लक्ष्य और गंतव्य होता है आत्मज्ञान की प्राप्ति।

योग का परम लक्ष्य आत्मज्ञान प्राप्त करना है, जिसे मोक्ष, राजयोग या कैवल्य भी कहा जाता है और इसे ही हम समाधि के नाम से भी जानते हैं। समाधि एक सामान्य रूप से प्रयोग किया जाने वाला संस्कृत शब्द है, जिसका अर्थ होता है ध्यान की ऐसी स्थिति जिसमें बाहरी चेतना विलुप्त हो जाती है। इसे ध्यान का या आध्यात्मिक जीवन का आखिरी चरण माना जाता है।

वास्तव में यह संस्कृत का शब्द है, जो ग्रीक, लेटिन और फारसी भाषा की तरह ही एक प्राचीन भाषा है। समाधि शब्द मूल रूप से धा धातु से लिया गया है, जिसके अर्थ होते हैं रखना, स्थापित करना, प्रस्तुत करना, छोड़ देना या स्थित करना। इसी प्रकार समाधि शब्द के अर्थ हैं एक साथ जोड़ना, संजोना, समापन, एकाग्रता, ध्यान या समझौता।

आध्यात्मिक जीवन में समाधि ध्यान की उस स्थिति को कहा जाता है जब ध्यान लगाने वाला व्यक्ति और ध्यान की जाने वाली वस्तुदोनों का आपस में विलय हो जाता है, एकाकार हो जाते हैं, और इनमें कोई भेद नहीं रह जाता।

उपनिषदों में कहा गया है कि किसी व्यक्ति को समाधि की अवस्था प्राप्त करने से पहले अनावश्यक गतिविधियों से बचना चाहिए। उसे संयमित वाणी, संयमित शरीर और संयमित मस्तिष्क की आवश्यकता होती है। एक व्यक्ति वास्तव में अपनी सच्ची प्रकृति और आत्मा को केवल समाधि के द्वारा ही प्राप्त कर सकता है।

स्वामी विवेकानंद ने बताए अनुसार निम्नलिखित चार योगज्ञानयोग, राजयोग, कर्मयोग और भक्तियोग में से किसी एक के द्वारा समाधि की अवस्था प्राप्त की जा सकती है। राजयोग अर्थात् मानसिक नियंत्रण के अभ्यास के विभिन्न चरणों का पालन करके व्यक्ति समाधि की अवस्था प्राप्त कर सकता है। कर्मयोग में निष्काम कर्मयानी बिना फल की चिंता किए किया जाने वाला कार्य करके भी समाधि की अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार भक्ति योग के द्वारा भी समाधि प्राप्त की जा सकती है। समाधि की अवस्था में मन अन्य सभी वस्तुओं का संज्ञान खो देता है।

समाधि का एक अर्थ यह भी है कि इस स्थिति में व्यक्ति तीनों सामान्य चेतनासोने, जागने और स्वप्न देखने की अवस्थाओं से परे किसी चौथी अवस्था में चला जाता है। समाधि समयातीत है, जिसे मोक्ष कहा जाता है। इस मोक्ष को ही जैन धर्म में कैवल्यज्ञान और बौद्ध धर्म में निर्वाण कहा गया है।

समाधि की प्राप्ति योगसाधना का सबसे अंतिम पड़ाव है, जब व्यक्ति सभी योगसाधनाओं को करने के बाद मन को बाहरी वस्तुओं से हटाकर निरंतर ध्यान करते हुए ध्यान में लीन होने लगता है। जो व्यक्ति समाधि को प्राप्त करता है, उसे स्पर्श, रस, गंध, रूप एवं शब्दइन विषयों की इच्छा नहीं रहती तथा उसे भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी, मान-अपमान तथा सुख-दुख आदि की कोई अनुभूति नहीं होती। ऐसा व्यक्ति शक्तिसंपन्न बनकर अमरत्व को प्राप्त कर लेता है। उसका जन्म-मरण का चक्र समाप्त हो जाता है।

मोक्ष या समाधि का अर्थ है अनु-परमाणुओं से मुक्त साक्षित्व पुरुष बन जाना। तटस्थ या स्थितप्रज्ञ अर्थात् परमस्थिर, परम-जागृत हो जानाज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय का भेद मिट जानाइसी में परम शक्तिशाली होने का बोध हुआ है।

कीवर्ड्स : योग, समाधि, आत्मज्ञान, राजयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, उपनिषद, स्वामी विवेकानंद, मोक्ष, कैवल्य, निर्वाण, ध्यान, भारतीय दर्शन, वैदिक परंपरा, आत्मसाक्षात्कार, स्थितप्रज्ञ, योग साधना, योग का इतिहास, आध्यात्मिक अनुशासन

समाधि की परिभाषा :

*तदेवार्थं मात्र निर्भासं स्वरूप शून्यमिव समाधिः।
न गंधं न रसं रूपं न च स्पर्शं न निःस्वनम्।
नात्मानं न परं चैव योगी युक्तः समाधिना।*

भावार्थ :

ध्यान का अभ्यास करते-करते साधक ऐसी अवस्था में पहुंच जाता है कि उसे स्वयं का भान नहीं रह जाता और केवल ध्येयमात्र रह जाता है, तो उस अवस्था को समाधि कहते हैं। संपूर्ण समाधि का अर्थ है मोक्ष या राजयोग, अर्थात् प्राणी का जन्म और मरण के चक्र से छूटकर स्वयंभू और आत्मवान हो जाना।

अध्ययन का उद्देश्य :

- योग के अलग-अलग ग्रंथों में योग की उच्चतर अवस्था, जिसे कोई समाधि, मोक्ष, निर्वाण, कैवल्य या राजयोग कहते हैं, उसको समझना और अध्ययन करना है।

शोध परिकल्पना :

- हठयोगिक ग्रंथ में वर्णित समाधिस्थिति का विश्लेषणात्मक अध्ययन।
- पातंजल योगदर्शन में वर्णित समाधिस्थिति का विश्लेषणात्मक अध्ययन।
- समाधि, मोक्ष, निर्वाण, कैवल्य या राजयोग का अध्ययन।
- हठयोगिक ग्रंथ और पातंजल योगदर्शन में वर्णित समाधिस्थिति का विश्लेषणात्मक अध्ययन।

शोध कार्यपद्धति :

यह एक सैद्धान्तिक शोध कार्य है, जिसमें सिद्धान्तों के आधार पर विश्लेषण किया गया है। सिद्धान्तों के लिए यौगिक मूलग्रन्थों से अध्ययन सामग्री का संकलन के साथ पूर्व में हुए शोध निबंध, शोध पत्रों से उपयुक्त सामग्री का आधार व तथ्यों को एकत्र कर विवेचन करने का प्रयास किया गया है।

विश्लेषणात्मक प्रस्तुति :

हठयोगप्रदीपिका में वर्णित समाधि :

हठयोग एक संस्कृत शब्द है जो सूर्य और चंद्रमा धातुओं का संयुक्त रूप है, अर्थात् जो स्वयं में परस्पर विपर्यय हैं, यानी एक-दूसरे के विरोधी हैं। सूर्य ऊष्मा, पुरुष और प्रयत्न जैसे आत्मनिर्भर गुणों का प्रतीक होता है, जबकि चंद्रमा शीतलता, मातृत्व और समर्पण का प्रतीक है। हठयोग को इस प्रकार से सृजित किया गया है ताकि यह हमारे हृदय, मन और शरीर की परस्पर विपरीत शक्तियों को ऐसे समन्वित करे कि हम अपने अस्तित्व से संबंधित गहन रहस्यों का आत्मसाक्षात्कार कर सकें।

इस योग के फलस्वरूप सुप्त अवस्था में पड़ी कुंडलिनी जागृत होती है और सुषुम्ना के माध्यम से ऊर्ध्वगामी यात्रा शुरू करती है। यह सभी षट्चक्रों का अतिक्रमण करते हुए सहस्रार की ओर अग्रसर होती है। वहां पहुंचकर यह ब्रह्मरंध्र में ब्रह्म का गुह्य स्थान से एक

आत्मा स्थापित करती है। इस एकात्मता को योग की संज्ञा दी गई है। यहां हठयोग की सम्यक् उपलब्धि होती है।

हठयोग का उद्देश्य शरीर और मन को नियंत्रित करना है। ऐसा इसलिए क्योंकि तन और मन को बिना संतुलन और स्वस्थ बनाए कोई भी आध्यात्मिक प्रयास सफल नहीं हो सकता। इस एकात्मक स्थिति को संभव बनाने के लिए हठयोगप्रदीपिका में अभ्यास हेतु निम्नलिखित चार अंगों का वर्णन किया गया है: आसन, प्राणायाम, मुद्रा, नादानुसंधान।

हठयोग के द्वारा जब अंतःस्रावी हार्मोन, मस्तिष्क तरंगों और प्राण को विनियमित किया जाता है, तो मन स्वस्थ हो जाता है। हठयोग एक साधन है जबकि राजयोग एक लक्ष्य। हठयोग शारीरिक क्रिया से शुरू होकर चेतना के शिखर तक पहुंचने का आधार है, जिसे उन्मनी अवस्था या मनोन्मनी अवस्था या राजयोग भी कहा जाता है।

योग का भारतीय तत्त्वचिंतन और आध्यात्मिक साधना में अनादि काल से गौरवशाली स्थान रहा है। अतीत की किसी अज्ञात काल से अब तक संध्यावंदन से लेकर समाधि तक, प्रवृत्तिमार्गियों से लेकर निवृत्तिमार्गियों को, नास्तिकों से लेकर विदेशियों तक इसकी व्यापकता, महत्ता और उपयोगिता के अकाट्य प्रमाण हैं। अर्थात् योग आज की उपभोक्तावादी संस्कृति की देन नहीं, अपितु यह उतनी ही प्राचीन है जितनी भारतीय संस्कृति।

योग शब्द यूज धातु से बना है जिसका अर्थ है जोड़ना, अर्थात् जो युक्त करे, मिलावे, उसे योग कहते हैं। योगसूत्र के रचनाकार महर्षि पतंजलि ने युज समाधि कहकर योग को समाधि के रूप में परिभाषित किया है, अर्थात् कामना, वासना, आसक्ति, संस्कार आदि सब प्रकार की आगंतुक स्थितियों को इस स्वरूप में प्रतीत होना, जीव का भ्रम होना ही समाधि है। विभिन्न आचार्यों ने विभिन्न साधनों द्वारा इस लक्ष्य अर्थात् समाधि की स्थिति को प्राप्त किया है और जैन दर्शन में योग को सम्यक जीवन का आधार मानकर सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान और सम्यक चरित्र को मोक्ष के मार्ग के रूप में स्वीकार किया गया है। बौद्ध दर्शन में क्षणिक और दुःखमय संसार से मुक्त हो जाने के प्रयास को योगजीवन का आरंभ माना गया है, जिसकी चरम परिणति समाधि में होती है।

हठयोगप्रदीपिका का परम लक्ष्य कुंडलिनी जागरण द्वारा षट्चक्र भेदन तथा कैवल्य की प्राप्ति है। कुंडलिनी शक्ति पायु और उपस्थ के बीच मूलाधार चक्र में त्रिकोण के आकार के योनिकामपीठ के मध्य शिवलिंग को साढ़े तीन वलयों में लपेट कर नीचे की ओर मुख करके, विद्युत की प्रभा के समान चमकती हुई, सुषुम्ना के मार्ग को रोककर अप्रबुद्ध और सुप्त रूप में स्थित रहती है। यद्यपि देह में स्थित कुंडलिनी स्वभाव से चेतन है, तथापि प्रबुद्ध न होने की अवस्था तक जीवात्मा को सांसारिक द्वंद्वों में विमोहित करने के कारण बन्धकारिणी है।

जब तक वह सुप्तावस्था में है, तब तक जन्म-मरण के बंधन में जीवात्मा भटकता रहता है; और जागने पर सहस्रदल तक संचार करती हुई यह साधक को उसके शुद्ध, व्यापक आत्मा के स्वरूप का ज्ञान करा देती है। अपानवायु निकुंचन से, मूलबंध, उड्डियानबंध

और जालंधर बंध के अभ्यास से जब कुंडलिनी शक्ति का उत्थान किया जाता है, तब वह सुषुम्ना के द्वार को छोड़कर ऊर्ध्वमुखी होकर षट्चक्र भेदन करते हुए सहस्रार में पहुंच जाती है।

मूलाधार में ब्रह्म चक्र है। इस समय अग्नि की दिव्य शक्ति का ध्यान करने से कुंडलिनी जग जाती है। इसके बाद स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध से होकर आज्ञा चक्र का भेदन करते हुए यह सहस्रार में पहुंच जाती है। सहस्रार में शक्ति चंद्र अमृत का पान करने में साधक प्रवृत्त होता है। यहां सहस्रार में पहुंचकर कुंडलिनी शिव में अंतर्भूत हो जाती है यही जीवात्मा का शिव पद में अभिन्न होना, हठयोगप्रदीपिका का परम लक्ष्य है।

राजयोगः समाधीश्च उन्मनी च मनोन्मनी

अमरत्वं लयस्तत्त्वं शून्याशून्यं पर पदम् ॥

यही उन्मनी अवस्था सहजावस्था है तथा अमनस्कता के धरातल पर जीवात्मा और परमात्मा की एकता, अभेदता है।

सिद्ध सिद्धांत पद्धति में कहा गया है, प्राणायाम इति प्राणस्य स्थिरता अर्थात् प्राणायाम से प्राण स्थिर होता है। पाँचों इंद्रियों को अपने विषय से पृथक् कर लेना ही प्रत्याहार है। साधक प्रत्याहार के द्वारा इंद्रियों को तत्तद विषयों से हटाकर आत्माभिमुखी कर देता है। अपने चित्त में आत्मतत्त्व का चिंतन, हठयोग की साधना में ध्यान कहा जाता है। आत्मध्यान से अमरत्व की प्राप्ति होती है। चक्रभेदन करते हुए ध्यान द्वारा कुंडलिनी को जागृत करने से जीवात्मा परमशिव का साक्षात्कार कर लेता है। समाधि में आत्मा के यथार्थ स्वरूप का अनुभव होता है तथा ध्याता, ध्येय और ध्यान तीनों एक हो जाते हैं। इस प्रकार का साक्षात्कार ही समाधि है। जीवात्मा शब्द का स्थूल और सूक्ष्म स्तर क्रम से श्रवण कर अमृतपद में प्रतिष्ठित हो जाता है। नादानुसंधान के फलस्वरूप अनाहत ध्वनि सुनाई पड़ती है। प्राण वायु के सुषुम्ना पद से ब्रह्मरंध्र में स्थिर होने पर घंटे, वंशी, वीणा, भ्रमरादि के नाद की तरह सूक्ष्मतर नाद सुनाई पड़ते हैं; इसके उपरांत साधक की समाधि अवस्था आती है। प्राण ब्रह्मरंध्र में स्थित हो जाता है और योगी शून्यपद में आत्मामृतपान कर शिव का साक्षात्कार प्राप्त करता है। रहित शब्दतत्त्व के रूप में ॐ अथवा ब्रह्म का प्रकाश होने पर जीवात्मा परमात्मा में अभेद हो उठता है।

नादानुसंधान वस्तुतः ब्रह्म का अन्वेषण है। एक साधक के लिए आवश्यक है कि वह अपना ध्यान स्थिरतापूर्वक इस नाद पर केंद्रित करे जिसकी धारणा प्रारंभिक स्थिति में अस्पष्ट होती है। हृदय इच्छाओं, पूर्वकृत कर्मों के प्रभाव तथा अनेक प्रकार की भावनाओं और प्रवृत्तियों का केंद्र होता है, जिनसे अनेक प्रकार की हलचलें उत्पन्न होती हैं। फलस्वरूप सामान्य जीवन-क्रम में यह नाद न तो सुना जा सकता है और न ही अनुभव किया जा सकता है। इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए सतर्कता और संयमपूर्वक अभ्यास करना चाहिए। हृदय के भीतर शुद्ध और शांत वातावरण उत्पन्न करना चाहिए और ध्यान को सतत रूप से नाद की ओर केंद्रित करने की चेष्टा करनी चाहिए। हृदय के भीतर नाद अनुसंधान तथा उस पर ध्यान के केंद्रीकरण के लिए सर्वप्रथम प्राणायाम द्वारा प्राण का संयम करना चाहिए। प्राणायाम के अभ्यास से ब्रह्म ग्रंथि का भेदन हो जाता है। तब शरीर के भीतर हृदयाकाश

से उत्पन्न आभूषण की विचित्र आनंददायिनी अनाहत ध्वनि सुनाई पड़ती है। उस समय साधक के शरीर से दिव्यगंध निकलती है। वह दिव्य चक्षु युक्त हो जाता है। इस स्थिति में साधक के हृदय में योग ज्ञान का प्रकाश भर जाता है। वह योग साधना की दिशा में प्राणायाम, मुद्राबंध, चक्रभेदन और कुंडलिनी के प्रबोधन द्वारा आरंभावस्था कहलाता है।

दूसरी घटावस्था है इसमें प्राणवायु, अपानवायु, नाद और बिंदु को सम्मिलित करके विशुद्ध चक्र में प्रवेश करती है। उस समय आसनसिद्ध योगी योग-ज्ञान-संपन्न तथा देवता के समान हो जाता है, तब विष्णु ग्रंथि का भेदन होता है और इस तरह अतिशून्य कंठदेश में स्थित विशुद्ध चक्र का भेदन हो जाता है, तब परमानंद की प्राप्ति कराने वाली भेरी का शब्द सुनाई पड़ता है जिसमें योगी पूर्णतः निमग्न होता है।

तीसरी परिचय अवस्था है, इसमें जब प्राणवायु विशुद्ध चक्र का भेदन कर संपूर्ण सिद्धियों के केंद्र महाशून्य अर्थात् भौहों के मध्यवर्ती आकाश में प्रवेश करती है, तब मृदंग नामक वाद्य विशेष ध्वनि सुनाई पड़ती है। इसके बाद चित्तानंद को जीत लेने पर अमनस्क अवस्था 'उन्मनी अवस्था' समाधि की प्राप्ति हो जाने पर योगी को सहजानंद की प्राप्ति हो जाती है, जिससे दोष, दुःख, सुख, निद्रा, बुढ़ापा और मृत्यु से योगी छूट जाता है।

नाद की चौथी अवस्था निष्पत्ति है। इसमें जब प्राणवायु रुद्रग्रंथि का भेदन करके ब्रह्मरंध्र में जाती है, तब उसे निष्पत्ति अवस्था कहते हैं। इस अवस्था में वंशी और वीणा का शब्द सुनाई पड़ता है। नादानुसंधान का अभ्यास करने वाले साधक को पहले अनेक प्रकार के शब्दों के श्रवण का अनुभव होता है और फिर सूक्ष्मातिसूक्ष्म शब्द सुनने की क्षमता आ जाती है। इस प्रकार विभिन्न नादों को सुनते-सुनते जिस नाद में मन लगे, उसी में चित्त को लगा ले और फिर किसी अन्य नाद में चित्त न लगाए, तो चित्त का लय उसी नाद में हो जाता है और फिर वह अन्यत्र किसी विषय की ओर आकर्षित नहीं होता।

सलील सैन्धवं यद्वत्साम्यं भजति योगतः ।

तथात्ममनसारैक्यं समाधिरभिधीयते ॥ (ह.प्र.)

इस नादानुसंधान के सतत अभ्यास से साधक आत्मा और ब्रह्म की एकता का हृदय में आत्म-पूर्णता की चेतना के आनंद का अनुभव करके सच्चिदानंदमय हो जाता है। मानव चेतना विकास की उच्चतम स्थिति समाधि में पहुंच जाती है। इसी को राजयोग भी कहते हैं।

घेरण्डसंहिता में वर्णित समाधिः

घेरण्डसंहिता हठयोग के तीन प्रमुख ग्रंथों में से एक है। इसकी रचना १७वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में की गई थी। इसमें सप्तांग योग की व्यावहारिक शिक्षा दी गई है। घेरण्डसंहिता सबसे प्राचीन और प्रथम ग्रंथ है जिसमें योग की आसन, मुद्रा, प्राणायाम, नेति, धौति आदि क्रियाओं का विशद वर्णन है। उनके बाद गुरु गोरखनाथ जी ने शिव संहिता ग्रंथ में तथा उनके उपरांत उनके शिष्य स्वामी स्वात्माराम जी ने हठयोगप्रदीपिका में आसन, प्राणायाम, मुद्रा, नेति, धौति, बंध आदि क्रियाओं का वर्णन किया है। इस ग्रंथ में

प्राणायाम की साधना को प्रधानता दी गई है। पातंजल योगदर्शन से घेरण्डसंहिता का राजयोग भिन्न है। जीव की सत्ता ब्रह्मसत्ता से सर्वथा भिन्न नहीं है। 'अहं ब्रह्मास्मि' का भाव इस संहिता का मूल सिद्धांत है।

घेरण्ड संहिता में ७ अध्याय (सप्तोपदेश): (षट्कर्म प्रकरणं, आसन प्रकरणं, मुद्रा कथनं, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यानयोग, समाधियोग) का विशद वर्णन है।

पहले उपदेश में महर्षि घेरण्ड ने अपने शिष्य चण्डकपाली को योग के षट्कर्म का उपदेश दिया है। दूसरे में आसन और उसके भिन्न-भिन्न प्रकार का विशद वर्णन किया है। तीसरे में मुद्रा के स्वरूप, लक्षण एवं उपयोग बताया गया है। चौथे में प्रत्याहार का विषय है। पाँचवें में स्थान, काल, मिताहार और नाड़ी शुद्धि के पश्चात् प्राणायाम की विधि बताई गई है। छठे में ध्यान करने की विधि और उपदेश बताए गए हैं। सातवें में समाधियोग और उसके प्रकार (ध्यान-योग, नाद-योग, रसानंद-योग, लय-योग, सिद्धि-योग, राजयोग) के भेद बताए गए हैं।

समाधि की उपयुक्त क्रमशः प्रारंभिक और अंतिम अवस्थाएँ हैं। विभिन्न साधनों से समाधि की स्थिति प्राप्त होने से समाधि के भी अनेक प्रकार हैं:

- ध्यान योग समाधि
- नाद योग समाधि
- मंत्र योग समाधि
- लय योग समाधि
- भक्ति योग समाधि
- राजयोग समाधि

ध्यान योग समाधि समाधि की यह आरंभिक स्थिति है। ध्यान पक्का होने पर ही समाधि लगती है, अतः साधक "ध्येय" का ध्यान कर ध्यान की सिद्धि प्राप्त करता है। ध्यान की सिद्धि के लिए साधक का मन पवित्र तथा पाप रहित रहना चाहिए।

घेरण्ड संहिता में उल्लिखित है कि:

शांभवी मुद्रिकां कृत्वा आत्मप्रत्यक्षमानयेत्

बिन्दुब्रह्म सकृद्वृष्ट्वा मनस्तत्र नियोजयेत्॥

खमध्ये कुरु चात्मानं आत्ममध्ये च खं कुरु॥

आत्मानं खमयं वृष्ट्वा न किंचिदपि बाध्यते॥

सदानन्दमयो भूत्वा समाधिस्थो भवेन्नरः॥

ध्यान की परिपक्वता के बिना समाधि नहीं हो सकती। ध्यान की सिद्धि से मन दोष रहित होता है जो साधक को पापों से मुक्त करता है। घेरण्ड संहिता में शांभवी मुद्रा करके प्रथम आत्मा का प्रत्यक्ष ध्यान करें और बिंदु में ब्रह्म का साक्षात्कार करते हुए मन को बिंदु में लगा दें। तत्पश्चात् मस्तक में विद्यमान ब्रह्म लोक में आकाश के मध्य में आत्मा को ले जाए, जीवात्मा में आकाश को लय करें और परमात्मा में जीवात्मा का लय करें। इससे योगी सदा आनंदमय एवं समाधि की स्थिति को प्राप्त करता है।

नाद योग समाधि :

हठयोग समाधि को ही नाद योग समाधि कहते हैं। मन को शरीर में स्थित अनाहत शब्द से पूरे नाद में लीन कर लेना ही नाद

योग समाधि है। उस स्थिति में निष्पब्ध समाधि रूप परम पद की प्राप्ति हो जाती है। इसमें मन नाद रूपी निःअक्षर शक्ति में समाने लगता है। इसको महाबोध समाधि भी कहते हैं। खेचरी मुद्रा का अभ्यास करते हुए जीवा को ब्रह्मरंध्र में स्थित करें। इससे साधारण क्रियाओं के हटने पर जो समाधि सिद्ध होती है वही नाद योग समाधि है।

मंत्र योग समाधि :

इसमें साधक अपने मन को श्वास-प्रश्वास की क्रिया में लय करता है। श्वास लेते तथा छोड़ते हुए उत्पन्न आवाज पर साधक ध्यान रखता है और एकाग्रचित होकर समाधिस्थ हो जाता है। अभ्यास पक्का हो जाने पर श्वास उलट जाती है। इसी उल्टे जाप का उच्चारण महर्षि वाल्मीकि जी ने किया था।

मन को वास के साथ लय कर लेना मंत्र योग समाधि कहलाती है। ह ध्वनि श्वास के साथ बाहर निकलती है तथा स ध्वनि के साथ अंदर आती है। इस प्रकार, सोहम और हंस दोनों के ही श्रवण का भान होता है। इस प्रकार मंत्र योग की समाधि को महाभाव समाधि भी कहते हैं।

लय योग समाधि :

नाभिकंद में कुंडलिनी सुषुम्ना नाड़ी का मार्ग बंद करके साढ़े तीन कुंडल मारे सुप्तावस्था में रहती है। शरीर में स्थित कुंडलिनी शक्ति का प्रतीक है। ध्यान साधना द्वारा समाधि की स्थिति को प्राप्त करने के लिए कुंडलिनी को जाग्रत करते हुए षट्चक्रों को भेदना होता है।

योगिक साधना से कुंडलिनी शक्ति को जाग्रत कर षट्चक्रों का भेदन करते हुए सहस्रार में स्थित शिव से उसका लय होना ही लय योग समाधि का स्वरूप है। योनि मुद्रा का साधन करके योगी स्वयं में शक्ति की भावना और परमात्मा में पुरुष की भावना करें। इसमें साधक को ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे उसमें परमात्मा की शक्ति लय होती जा रही है। इससे जो समाधि होती है, उसे लय योग समाधि कहते हैं। लय योग से प्राप्त समाधि को महालय समाधि भी कहते हैं।

भक्ति योग समाधि :

जब साधक अपने मन को अपने इष्ट में इस प्रकार समा देता है कि उसे अपने शरीर का भी भान नहीं रहता है। वह बाहरी सभी प्रकरणों से अपने आप को संज्ञाशून्य समझने लगता है। शरीर प्रसन्नता से भर जाता है, आनंद में आँसू निकलने लगते हैं। अपने हृदय में परम आह्लाद सहित भक्तियोग के द्वारा इष्ट देव के स्वरूप का चिंतन करना चाहिए। इससे आनंद के आँसू बहने लगते हैं और शरीर पुलकायमान होता है तथा मन में उन्मनी भाव और एकाग्रता आकर ब्रह्म से साक्षात्कार होता है यह भक्ति योग समाधि कहलाती है।

राजयोग समाधि :

“घटाद्वित्रं मनः कृत्वा चैकं कुर्यात्परात्मनि।

समाधिं तं विजानीयान्मुक्तसंज्ञो दशादिभिः॥” (घे.सं.)

योगिक क्रियाओं से मन की चंचल वृत्तियों पर नियंत्रण स्थापित कर उसे निरुद्ध करके आत्मा में लय करें तथा आत्मा को

परमात्मा में लय कर दे। मनोमूर्छा कुंभक करता हुआ साधक मन को एकाग्र करके ब्रह्म में लगाए। इसमें साधक की प्राथमिकता यही रहती है कि मन की सभी वृत्तियों को रोककर प्रभु में लगा दिया जाए। इस प्रकार परमात्मा के साथ समायोग सम्मिलित होने को राजयोग समाधि कहते हैं।

योग दर्शन में वर्णित समाधि :

योग शब्द की उत्पत्ति यून धातु से हुई है, जिसके दो मुख्य अर्थ हैं मिलन (युज्यति) और एकाग्रता (समाधि)। मिलन के संदर्भ में इसका अर्थ है व्यक्तिगत चेतना या आत्मा का सार्वभौमिक चेतना या परमात्मा से मिलन, किंतु यह अर्थ न तो योग दर्शन में पाया जाता है और ना ही सांख्य दर्शन में, जिन पर योगाभ्यास आधारित है। योग का मुख्य अर्थ एकाग्रता समझा जा सकता है। यह एकाग्रता धीरे-धीरे जागरूकता और शुद्ध जागरूकता की ओर ले जाती है, जो योग का लक्ष्य है। समाधि, जो पतंजलि अष्टांग योग का अंतिम अंग है, एकाग्रता के आधार पर अंतिम लक्ष्य तक पहुंचने का माध्यम है।

मिलन के अर्थ में, योग को मानव व्यक्तित्व (शरीर, मन और आत्मा) के विभिन्न तत्वों के एकीकरण के रूप में बेहतर रूप से समझा जा सकता है, जो एक सुदृढ़, सामंजस्यपूर्ण और समग्र व्यक्तित्व का नमिण करती है। योग, चित्त की केंद्रित अवस्था में शुरू होता है, अर्थात् एकाग्रता में। पतंजलि में इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अष्टांग योग या राजयोग का प्रतिपादन एक अनुशासन/आदर्श के रूप में किया।

पतंजलि के अष्टांग योग का उद्देश्य या चरम लक्ष्य कैवल्य है। यह वह अवस्था है, जहां मनुष्य अपने दुखों एवं पीड़ाओं से हमेशा के लिए मुक्त हो जाता है। पतंजलि योग मुख्य रूप से एकाग्रता प्राप्त करने के लिए मन के प्रबंधन से संबंधित है। यह एकाग्रता, जागरूकता के लिए मार्ग प्रशस्त करते हुए पूर्ण जागृति प्रदान करती है। कैवल्य स्थिति वह है, जहां मनुष्य के सभी दुखों एवं कष्टों का सदा के लिए अंत हो जाता है। कैवल्य प्राप्त करने की प्रक्रिया में योग अभ्यास के दौरान अन्य लाभ भी दिखाई देते हैं, जिनमें शारीरिक एवं मानसिक लाभ मुख्य हैं।

समाधि की अवस्था में साधक का अस्तित्व समाप्त हो जाता है, मात्र ध्येय वस्तु ही प्रकाशित रहती है।

समाधिना निर्लिप्त च समाधि द्वारा निर्लिप्त अवस्था की प्राप्ति होती है। इस अवस्था को प्राप्त करने के बाद अपने मन को, अपनी अंतश्चेतना को आत्मा के साथ जोड़ने का प्रयास होना चाहिए। जब उस परमात्मा के साथ योग की स्थिति उत्पन्न होती है, तब वह स्थिति समाधि है। इस अवस्था को प्राप्त कर लेने के पश्चात् व्यक्ति का पुनर्जन्म नहीं होता है। पुनर्जन्म का कारण मनुष्य की इच्छा होती है और जब समाधि की अवस्था में इच्छा ही नहीं, मन ही नहीं, अंतःकरण ही नहीं, अपने आपको लय कर दिया है, तब जन्ममरण का प्रश्न ही नहीं उठता। इसी बिंदु पर व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है।

एक तरह से कहा जा सकता है कि यही योग विज्ञान का रहस्य है।

समाधि के प्रकार:

1. संप्रज्ञात समाधि यह चार प्रकार के हैं: विचारानुगत, वितर्कानुगत, आनंदानुगत एवं अस्मितानुगत समाधि।
2. असंप्रज्ञात समाधि यह दो प्रकार के हैं: भवप्रत्यय एवं उपासप्रत्यय समाधि।

संप्रज्ञात समाधि का स्वरूप:

जिसकी अभ्यास, वैराग्य आदि साधनों से समस्त बाह्य वृत्तियाँ क्षीण हो चुकी हैं, ऐसे स्फटिक मणि के भांति निर्मल चित्त का जो ग्राहिता, ग्रहण तथा ग्राह्य में स्थित हो जाना और तदाकार हो जाना है, यही संप्रज्ञात समाधि है।

संप्रज्ञात योग के तीन ध्येय पदार्थ माने गए हैं:

1. ग्राह्य
2. ग्रहण
3. ग्राहिता

समाधि के विषय:

वितर्कानुगत समाधि (सवितर्क निर्वितर्क) महाभूत अर्थात् स्थूल।

विचारानुगत (सविचार निर्विचार) तन्मात्राएं अर्थात् सूक्ष्म।

वितर्कानुगत समाधि: जब स्थूल पदार्थ को लक्ष्य बनाकर उसके स्वरूप को जानने के लिए योगी अपने चित्त को उसमें लगाता है, तब पहले होने वाले अनुभव में वस्तु के नाम, रूप और ज्ञान के विकल्प का मिश्रण रहता है। अर्थात् उसके स्वरूप के साथ नाम और प्रतीति का भी चित्त में पूर्ण रहना होता है। अतः इस समाधि को सामान्यतः सविकल्पा समाधि कहते हैं। इसके बाद शब्द और प्रतीति की स्मृति के भली-भांति लुप्त हो जाने पर, स्वरूप से शून्य हुई स्मृति केवल ध्येय मात्र को प्रत्यक्ष करने वाली चित्त की स्थिति निर्वितर्क समाधि है।

स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का!

विचारानुगत समाधि :

इसी प्रकार सूक्ष्म पदार्थों में की जाने वाली सविचार और निर्विचार समाधि है। इस समाधि के ध्येय सूक्ष्म विषय हैं।

एते चैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता!

आनंदानुगत समाधि :

निर्विचार समाधि के पश्चात् साधक को केवल अनंत आनंद मात्र की अनुभूति शेष रह जाती है।

अस्मितानुगत समाधि :

अंत में साधक आनंद की अनुभूति से भी उपरत हो जाता है और केवल स्वयं होने का निर्लिप्त भाव शेष रह जाता है। यह अवस्था अस्मितानुगत समाधि कहलाती है।

सबीज समाधि :

यह सबीज समाधि है क्योंकि बीज रूप से किसी न किसी ध्येय पदार्थ को विषय करने वाली चित्तवृत्ति का अस्तित्व सा रहता है। अतः संपूर्ण वृत्तियों का पूर्णतः निरोध न होने के कारण कैवल्य नहीं हो पाता है और यह सबीज समाधि कहलाती है।

निर्विचार समाधि में साधक प्रवीणता प्राप्त कर लेने पर रजोगुण और तमोगुण का आवरण क्षीण हो जाता है तथा सतोगुण की

प्रधानता हो जाती है, जिससे चित्त अत्यंत निर्मल हो जाता है। इससे योगी को एक ही काल में समस्त पदार्थ विषयक यथार्थ ज्ञान हो जाता है।

निर्विचारवैशारद्योऽध्यात्मप्रसादः!

ऋतंभरा प्रज्ञा का स्वरूप व महत्व:

उस समय योगी की बुद्धि ऋतंभरा को धारण करने वाली हो जाती है। इस स्थिति में किसी भी विषय में भ्रांति का लेशमात्र भी नहीं रहता। अविद्या, संशय, विपर्यय भी पूर्णतः समाप्त हो जाते हैं। साधक सत्य ही दर्शन, ग्रहण व प्रकट करता है।

ऋतंभरा तत्र प्रज्ञा!

श्रवण और अनुमान से होने वाली बुद्धि की अपेक्षा यह बुद्धि भिन्न विषय वाली है, क्योंकि वह विशेष रूप में अर्थ का साक्षात्कार करने वाली है। मनुष्य जो कुछ भी अनुभव करता है, जो कुछ भी क्रिया करता है, उन सबके संस्कार अंतःकरण में इकट्ठे हुए रहते हैं। इस प्रकार इस बुद्धि से उत्पन्न संस्कार अन्य दूसरे संस्कारों को विनष्ट करने वाले होते हैं।

असंप्रज्ञात (निर्विज) समाधि का स्वरूप :

विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः !

जब ऋतंभरा प्रज्ञा से उत्पन्न उच्च संस्कारों से भी आसक्ति न रहने से उन संस्कारों का भी निरोध हो जाता है, तब सुध-बुध का ही अभाव हो जाता है। इस स्थिति में चित्त की कोई भी वृत्ति शेष नहीं रहती। सभी संस्कारों के बीज समाप्त हो जाने से इसे निर्विज समाधि कहते हैं। साधक जब परवैराग्य को प्राप्त कर लेता है, उस समय स्वभाव से चित्त संसार की ओर नहीं जाता। वह उनसे अपने आप उपरत हो जाता है। परवैराग्य में विवेकख्याति रूप अंतिम वृत्ति भी निरुद्ध हो जाती है। इस स्थिति को विरामप्रत्यय कहते हैं। जब प्रकृति-संयोग का अभाव हो जाता है, तब दृष्टा का अपने स्वरूप में स्थिति हो जाती है। इसी का नाम कैवल्य है।

पतंजलि विशेषतः तीन प्रकार की समाधि का उल्लेख करते हैं :

१. सबीज समाधि
२. निर्बीज समाधि
३. धर्ममेघ समाधि

समाधि वह अंतिम अवस्था है, जहां 'कैवल्य' फलित होता है और चित्तवृत्ति निरोध की प्रक्रिया पूर्ण होती है। पतंजलि योग में ध्यानावस्था में धारणा, ध्यान और समाधि का समावेश है। तीनों के सम्मिलित रूप को संयम कहा गया है। पतंजलि के अनुसार,

यह संयम ही है जो विभिन्न प्रकार की सिद्धियों/विभूतियों हेतु हमें सक्षम बनाता है।

उपसंहार:

समाधि विद्या का उपसंहार करते हुए महर्षि घेरंड अपने शिष्य से कहते हैं कि उन्होंने समाधि विज्ञान के विषय में उन सब विधियों का वर्णन किया है जिनके द्वारा ध्यान की अवस्था में मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है।

ध्यान का लक्ष्य चित्त रहित स्थिति का अनुभव करना है। मस्तिष्क रहित अवस्था हठयोगप्रदीपिका में उन्मनी अवस्था कहलाती है। इस स्थिति के लिए दूसरा शब्द मनोन्मनी अवस्था है। हठयोगप्रदीपिका के चतुरंग योग में चौथा अंग नादानुसंधान है, जो ध्यान की उस अवस्था की ओर लेकर जाता है, जहां मस्तिष्क का विघटन नाद में हो जाता है। नादानुसंधान की चार अवस्थाएं कुंडलिनी जागरण की अवस्थाओं के साथ बढ़ती हैं तथा सुषुम्ना नाड़ी के द्वारा आगे बढ़ती हैं। अंततः प्राण, सुषुम्ना के द्वारा सहस्रार चक्र तक पहुंचते हैं। यह अवस्था कैवल्य या मोक्ष या आत्मानुभूति की अवस्था होती है।

पतंजलि योग को राजयोग भी कहा जाता है, क्योंकि योग की अन्य पद्धतियाँ (ज्ञान, भक्ति, कर्म, हठ, मंत्र इत्यादि) के मौलिक सिद्धांत बहुत ही सूक्ष्म तरीके से बीज रूप में पतंजलि योग में रोपित हुए हैं। हठयोग शारीरिक क्रियाओं पर बल देता है, जबकि अष्टांग योग मानसिक क्रियाओं पर बल देता है, लेकिन दोनों का लक्ष्य एक ही है। जब अष्टांग योग का अभ्यास दृढ़ संकल्प एवं उत्साह से किया जाता है तो परिणामस्वरूप चित्त की अशुद्धियाँ समाप्त हो जाती हैं और ज्ञान का प्रकाश उत्पन्न होता है, जो विवेक ख्याति (प्रकृति और पुरुष के बीच प्रबुद्ध भेद) के रूप में फलीभूत होता है। इस अवस्था को प्राप्त कर लेने के पश्चात व्यक्ति का पुनर्जन्म नहीं होता है। पुनर्जन्म का कारण मनुष्य की इच्छा होती है जब समाधि की अवस्था में इच्छा ही नहीं, मन ही नहीं, अंतःकरण ही नहीं, तब जन्म-मरण का प्रश्न ही नहीं उठता। और यही इन तीन ग्रंथों का और योग विज्ञान का रहस्य है।

सन्दर्भ सूची :

१. स्वामी निरंजनानंद सरस्वती: योगदर्शन, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार।
२. स्वामी निरंजनानंद सरस्वती: घेरंडसंहिता, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार।
३. स्वामी निरंजनानंद सरस्वती: हठयोगप्रदीपिका, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार।

■ ■ ■